□ डाक्टर जगदीशचंद्र जैन
(अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान्)

भारतीय पुरातत्व की अवहेलना

१९७३ में पेरिस में भरने वाली अन्तर्राष्ट्रीय ओरिंटियल कान्फरेन्स में भाग लेने के लिए जब पेरिस की यात्रा करनी पड़ी तो यहाँ के सांस्कृतिक केन्द्रों की चहल-पहल देखकर आश्चर्यमुग्ध हुए बिना न रहा गया। कितने हो तो यहाँ संग्रहालय हैं जिनमें दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। लोग पहले से टिकट खरीदकर संग्रहालयों में प्रवेश करते हैं और वहाँ रखी हुई वस्तुओं को बड़े गौर से देखते हैं। एक सड़क तो कलागृहों की ही सड़क है जहाँ छोटे-छोटे कक्षों में नवयुवक कलाकारों की कृतियाँ बड़े करीने से सजाकर रखी गई हैं। कला-रसिकों का तांता लगा हुआ है, उदीयमान कलाकार दीवाल पर लगी हुई कलाकृतियों का अध्ययन करने में व्यस्त हैं, कुछ अपनी डायरी में नोट्स भी लिख रहे हैं।

एक संग्रहालय में इतने अधिक कक्ष हैं कि थोड़े समय के अन्दर सबको देख पाना सम्भव नहीं। इनके देखने में कई दिन लग जाते हैं, फिर भी कला के प्रेमी इनका पूरा-पूरा लाभ उठाये बिना नहीं छोड़ते। कुछ लोग तो वहीं आसन जमाकर बैठ जाते हैं किसी कलाकृति का सांगोपांग अध्ययन करने के लिए।

इन कक्षों में से एक कक्ष में चीनी पुरातत्व से सम्बन्ध रखने वाली खास-खास वस्तुओं का संग्रह सुरक्षित है। पेकिंग (आजकल बेजिंग) और उसके आसपास के प्रदेशों की खुदाई में प्राप्त कितनी ही प्राक् ऐतिहासिक कालीन वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया है। इनमें सबसे अधिक आकर्षक और महत्वपूर्ण है ५ लाख साल पुराने पेकिंग-मानव के अवशेष और तत्सम्बन्धी खोपड़ी, दाँत, जबड़े, पत्थर के औजार तथा अब से साढ़े तीन हजार साल पहले भविष्य जानने के लिए उपयोग में ली जाने वाली भविष्य-सूचक हड्डियाँ।

संग्रहालय देखने के लिए मेरे साथ आने वाले दो और प्रोफेसर थे—एक कनाडा के विश्वविद्यालय में और दूसरे अमरीका के विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या के अध्यापक थे। संग्रहालय का चीनी कक्ष देखकर हम लोग बड़े प्रभावित हुए थे। लेकिन साथ ही एक दूसरा प्रश्न हमारे मस्तिष्क को झकझोरने लगा, वह था इस विश्वप्रसिद्ध संग्रहालय में भारतीय कक्ष का अभाव! हम सब की यही राय थी कि भारतीय पुरातत्व इतना विपुल, समृद्ध, मूल्यवान एवं उपयोगी है, फिर भी उसकी चर्चा यहाँ क्यों नहीं सुनाई पड़ती? क्या इसे भारत सरकार का दुर्लक्ष्य कहा जाये या और कुछ?

अभी हाल में भारत सरकार ने भारत की प्राचीन संस्कृति का प्रचार व प्रसार करने के लिए विदेशों में उत्सवों का आयोजन किया था। फलस्वरूप सोवियत रूस, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और फ्रांस आदि देशों में भारतीय कलावेत्ताओं के साथ-साथ शिल्पकला की दृष्टि से अभूतपूर्व, बहुमूल्यबान एवं दुर्लभ मूर्तियाँ भी भेजी गई थीं। निश्चय ही विदेशी प्रजा भारतीय कला-कौशल, नृत्य-संगीत, खेल-तमाशे, स्थापत्य एवं शिल्पकला आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रही होगी। खूब वाहवाह रही, खूब जश्न मनाये गये, मेलों का आयोजन किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया, व्याख्यानों की भरमार रही और प्रशंसा-पत्र पढ़े गये। लेकिन अत्यन्त खिन्न मन से लिखना पड़ता है कि हमारी कितनी ही दुष्प्राप्य कलाकृतियाँ खण्डित पाई गईं और कुछ तो लापता ही हो गईं। बहुमूल्यवान हमारी ये कलाकृतियाँ हमसे सदा के लिए दूर चली गईं। पटना संग्रहालय की अभूतपूर्व यक्षिणी की कलापूर्ण कृति इनमें से एक है। जहाज द्वारा विदेशों में भेजे जाने के पूर्व इन कलाकृतियों का लाखों रुपये का बीमा कराया गया था। ऐसी हालत में किसी मूर्ति के खण्डित हो जाने पर हम चाहें तो उसकी एवज में रुपया वसूल कर सकते हैं लेकिन वह दुर्लभ मूर्ति तो हमें कभी प्राप्त होने वाली नहीं, जिस मूर्ति के रूप सौन्दर्य को गढ़ने और संवारने में हमारे शिल्पियों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था।

आइये, अब जरा अपने गरेबान में झांक कर भी देखा जाये। हम अपने पुरातत्व के ज्ञान से कितने परिचित हैं! हमारे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति पढ़ाने वाले कितने अध्यापक ऐसे मिलेंगे जिन्हें संस्कृत, पालि और प्राकृत का ज्ञान हो—जिन भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य पुरातत्व विद्या की आधारशिला है। केवल अंग्रेजी में लिखे हुए ग्रन्थों को पढ़कर प्राचीन भारतीय इतिहास एवं कला में प्रवीणता प्राप्त नहीं की जा सकती। जबकि विदेशी विश्वविद्यालयों में यह बात नहीं है। भारतीय विद्या का अध्ययन करने के लिए संस्कृत आदि भारत की प्राचीन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सर विलियम जोन्स, चार्ल्स विलकिन्स, हेनरी कोलब्रुक, एच. एच. विलसन, फ्रान्ज बॉप, जेम्स प्रिंसेप, जॉन मार्शल, व्हीलर, कीथ, श्री एवं श्रीमती राइस डैविड्स, हरमान याकोबी, रिशार्ड पिशल आदि कतिपय विदेशी विद्वानों का नामोल्लेख करना पर्याप्त होगा जिन्होंने भारत की प्राचीन भाषाओं और साहित्य का गहन अध्ययन कर अपने-अपने क्षेत्र में वैशिष्ट्य प्राप्त किया।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाले कितने ही छात्र और छात्राएँ भारत की प्राचीन संस्कृति, उसकी कला और इतिहास के ज्ञान से सर्वथा ही वंचित रहते हैं। उन्हें बम्बई के पास स्थित एलीफैण्टा टापू की त्रिमूर्ति, उड़ीसा के कोणार्क, राजस्थान के रणकपुर मन्दिर एवं दक्षिण भारत के एक से एक कलापूर्ण मन्दिरों के सम्बन्ध में अत्यन्त अल्प, नहीं के बराबर जानकारी है।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के तत्वावधान में जो कभी-कभार उत्खनन का कार्य चलता है उसकी जानकारी भी साधारण जन को प्रायः कम ही मिलती है। इसके सम्बन्ध में प्रायः भारी-भरकम अँग्रेजी की पत्रिकाओं आदि में ही लेख प्रकाशित किये जाते हैं जो सामान्य जन की पहुँच के बाहर हैं। इसके अलावा, हमारी कितनी ही कलाकृतियाँ तो चोरी चली जाती हैं जो देश-विदेश में बहुत ऊँची कीमत पर बिकती हैं।

सुप्रसिद्ध सम्राट् अशोक (२७४-२३७ ई. पू.) ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जगह-जगह शिला लेख उत्कीर्ण कराये और बड़े-बड़े स्तूप स्थापित किये। लेकिन आगे चलकर हम इन ऐतिहासिक महत्वपूर्ण स्तूपों का मूल्य आकलन करने में असमर्थ होकर इन्हें पराक्रमी भीम की लाट कहकर पुकारने लगे, या फिर शिवजी का लिंग मानकर इनकी पूजा-उपासना करने लगे। बिहार राज्य में परम्परागत कितने ही मठ-मन्दिर आज भी मौजूद हैं जहाँ भक्त गणों द्वारा मूर्ति के ऊपर सतत जल प्रक्षेपण किये जाने के कारण मूर्ति का वास्तविक रूप ही भ्रष्ट हो गया है तथा चन्दन और सिन्दूर पोते जाने के कारण वह ओझल हो गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिल्ली-तोपरा अशोक-स्तंभ

यह स्तंभ अंबाला और सरसावा (जिला सहारनपुर) के बीच अवस्थित है जिसे लोग भीम-स्तंभ, सुवर्ण-स्तंभ, फीरोजशाह-स्तंभ आदि नामों से पुकारते हैं। सुलतान फीरोजशाह (१३५१-१३८८ ई.) इस स्तंभ की गरिमा देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने सोचा कि अवश्य ही यह स्तंभ उसके इस महल की शोभा में चार चांद लगा सकेगा। उसने इस विशाल स्तंभ को पहले दिल्ली मँगवाया, वहाँ से ४२ पहियों वाली बड़ी ट्रक से जमना नदी के किनारे लाया गया। फिर बड़े-बड़े बजरों पर लादकर नदी के बीचों बीच प्रवाहित कर दिया गया। और इसके फीरोजाबाद पहुँचने पर, पहले से तैनात मल्लाहों ने इसे नदी में से निकालकर शाही कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिया। लीजिये, सुलतान का शाही महल इस स्तंभ के लगने से जगमगा उठा।

बिहार का चंपारण जिला महात्मा गांधी के सत्याग्रह के कारण सुप्रसिद्ध है। यहाँ के लौडिया (लकुट का अपभ्रंश) अरेराज और लौडिया नंदनगढ़ नामक अशोक-स्तंभ सर्वविदित है। यहाँ के निवासी इन स्तंभों को विशाल शिवलिंग समझकर इनकी पूजा-उपासना करने लगे और दोनों को लौड़ कहने लगे—दोनों गाँव ही लौडिया कहे जाने लगे। आगे चलकर जब सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मेजर-जनरल एलैक्जेण्डर कनिंघम का यहाँ आगमन हुआ तो उन्होंने दोनों को जुदा करने के लिए पहले को लौडिया अरेराज (गांव के पडौस के शिवमंदिर के नाम पर) और दूसरे को लौडिया नंदनगढ़ नाम से कहना शुरू किया। दोनों ही सुन्दर स्तंभ पालिश किये हुए बलुआ पत्थर के एक ही खण्ड से निर्मित किये गये हैं, जो भारत की उत्कृष्ट कला का अनुपम नमूना है। लेकिन हमें भूलना न चाहिये कि इस उत्कृष्ट कला-सौन्दर्य से अनभिज्ञ हमारी सामान्य अनपढ़ जनता इन्हें शिवजी महाराज का विशाल लिंग समझकर उसकी मनौती करती है और इसके निर्माण का श्रेय दिया जाता है गदाधारी भीमराज को!

वैशाली की खुदाई

प्राचीनकाल में वैशाली वज्जि गणतंत्र की राजधानी रही है, जिस गणतंत्र को भगवान महावीर ने अपने जन्म से पवित्र किया था। विशाल गुणयुक्त होने के कारण इसको वैशाली कहा जाना स्वाभाविक है। सुप्रसिद्ध उज्जैनी नगरी को भी विशाला कहा गया है। संभवतः नाम सादृश्य के कारण वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थल न मानकर, उज्जैनी को उनकी जन्मभूमि कहा जाने लगा। कुछ लोग कुण्डलपुर (कुण्डग्गाम अथवा कुण्डपुर—वैशाली का एक भाग—के नाम सादृश्य के कारण) को महावीर की जन्मभूमि कहने लगे। इससे यही पता चलता है कि प्राचीनकाल में भी हम इतिहास और भूगोल के सही ज्ञान से वंचित थे। आचार्य अभयदेव जैसे विद्वान से भी इस तरह की भूलें हुई हैं। अस्तु, अब तो यह निश्चय हो गया है कि महावीर का जन्म वैशाली में ही हुआ था और इसीलिये उन्हें वैशालीय कहा गया है।

वैशाली नगरी की खोज के लिए हम मेजर जनरल एलैक्जेण्डर कनिंघम के सदा ऋणी रहेंगे जिन्होंने अपनी सूझ-बूझ से यह पता लगाने का साहस किया कि वसाढ़ नामक गाँव ही प्राचीन वैशाली के रूप में मौजूद है। उनकी प्रेरणा से ही भारत की ब्रिटिश सरकार ने भारत के पुरातत्व के उद्धार के लिये आर्कियोलौजीकल सर्वे नामक विभाग की स्थापना की, और इसके सर्वप्रथम डाइरैक्टर बनने का सौभाग्य डा. कनिंघम को प्राप्त हुआ। सन् १८६२ से १८८४ के बीच कनिंघम ने यहाँ आकर कई बार डेरा लगाया तथा आजकल के राजा विशाल का गढ़ और अशोक स्तंभ के आसपास खुदाई का काम शुरू कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस खुदाई में उन्हें बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई, यद्यपि फिर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन था कि जिस वैशाली की वे तलाश करने में लगे हैं, वह यही है। लेकिन उन्होंने हिम्मत न हारी। आगे चलकर उनके उद्योग से १९०३-४ में डाक्टर टी. ब्लाख को और १९१३-१४ में डाक्टर डी. बी. स्पूनर को यहाँ भेजा गया। इस खुदाई में मिट्टी की मुहरों पर उत्कीर्ण लेखों की प्राप्ति हुई जिससे कनिंघम साहब का सपना सार्थक सिद्ध होता हुआ दिखाई दिया। अब यह सिद्ध हो गया कि यह बसाढ़ ही प्राचीन वैशाली है।

लेकिन यह काफी नहीं था, अभी बहुत कुछ करना बाकी था। भारत सरकार आर्थिक कठिनाई के कारण खुदाई के काम को आगे बढ़ाने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर रही थी। इस समय हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार श्री जगदीश चन्द्र माथुर, आई. सी. एस. जो हाजीपुर के एस. डी. ओ. बनकर यहां आये थे, वैशाली के गौरव से सुपरिचित थे। उनके प्रयत्न से १९४५ में वैशाली संघ की स्थापना की गई। इस संघ की ओर से ७ हजार रुपये की रकम प्राप्त कर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के वरिष्ठ अधिकारी श्री कृष्णदेव के अधीक्षण में १९५० में खुदाई का कार्य फिर से शुरू किया गया। इस बार राजा विशाल का गढ़ और चक्रम दास स्थानों पर ही खुदाई केन्द्रित की गई। पांचवीं बार बिहार सरकार के काशीप्रसाद जायसवाल अनुसंधान प्रतिष्ठान ने डाइरैक्टर सुप्रसिद्ध इतिहास तत्ववेत्ता प्रोफेसर ए. एस. आल्तेकर ने चीनी यात्री श्र्वेन च्वांग के अभिलेखों के आधार पर खुदाई का काम हाथ में लिया। इस समय अभिषेक पुष्करिणी के पास मिट्टी के बने एक स्तूप में से भगवान बुद्ध के शरीरावशेष की एक मंजूषा मिली। आगे चलकर १९७६-७८ में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की ओर से फिर से खुदाई की गई। यह खुदाई कोल्हुआ गांव में निर्मित अशोक स्तम्भ के आस पास की गई और इस खुदाई में जो बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई उससे वैशाली का समस्त इतिहास प्रकट हो गया। और अब यह पूर्ण रूप से सिद्ध हो गया है कि यह बज्जियों लिच्छवियों की वही रमणीय नगरी है जिसका सरस वर्णन जैन एवं बौद्धों के आगम ग्रन्थों में उपलब्ध है।

पुनश्च : लेख समाप्त करने के पहले, यहाँ एक और बात लिख देना आवश्यक है। श्वेतांबरीय आवश्यक चूर्णी (ईसा की ७वीं शताब्दी) के आधार से इन पंक्तियों के लेखक ने भगवान महावीर की विस्तृत विहार-चर्या का विवरण मानचित्र के साथ अपनी रचनाओं "भारत के प्राचीन जैन तीर्थ" जैन संस्कृति संशोधन मंडल, वाराणसी, १९५२; "लाइफ इन ऐन्शियेण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन एण्ड कमेण्टरीज," मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली, (संशोधित संस्करण, १९८४) में प्रस्तुत किया है। वैशाली प्राकृत संस्थान (मुजफ्फरपुर) में १९५८-५९ प्रोफेसर पद पर आसीन रहकर, पदयात्रा द्वारा भगवान महावीर की विहार-चर्या सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध में एक विस्तृत योजना संस्थान के डाइरैक्टर के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। दुर्भाग्य से वह योजना कार्यान्वित न की जा सकी। अभी हाल में उक्त संस्थान की कार्यकारिणी का सदस्य होने के नाते, फिर से संस्थान के डाइरैक्टर का ध्यान आकर्षित किया गया, और अनुरोध किया गया कि संस्थान के किसी शोध विद्यार्थी को शोध के लिए उक्त विषय दिया जाये जिससे कि वह छात्र वैशाली के आस-पास के प्रदेशों में पदयात्रा द्वारा भगवान महावीर की बिहार चर्या सम्बन्धी जानकारी प्रस्तुत कर सके। इस सम्बन्ध में आरा के सुप्रसिद्ध उद्योगपति दिवंगत सेठ निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार जैन के उत्तराधिकारी परम उत्साही श्री सुबोध कुमार जैन को यथाशक्ति आर्थिक सहायता देने के लिये भी राजी किया जा सकता है। यदि यह योजना आज भी सम्भव हो सके तो निश्चय ही भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हो सकती है। वर्तमान में वैशाली स्थित वैशाली प्राकृत शोध संस्थान का यह महान् योगदान कहा जायेगा। □

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org